पाठ योजना

महाविद्यालय का नाम — राज नारायण महाविद्यालय, पंडौल
दिनांक — 7-04-2020
विषय — इतिहास
पाठ — उत्तरवैदिककालीन सामाजिक एवं आर्थिक जीवन
कक्षा — स्नातक प्रथम खंड (Subsidiary)

क्रम	शिक्षण बिन्दु	छात्र-अध्यापक क्रियाएं	श्यामपट्ट
①	परिचय	उत्तर वैदिक कालीन सामाजिक एवं आर्थिक जीवन के सन्दर्भ में ऋग्वैदिककालीन जीवन की अपेक्षा उल्लेखनीय परिवर्तन देखने को मिलते हैं जहाँ सामाजिक जीवन के वर्ण व्यवस्था ने अपनी जड़ें जमा ली वहीं स्त्रियों की दशा में पूर्व की अपेक्षा ह्रास देखने को मिलता है। धार्मिक जीवन के इस दौर में देवताओं की महत्ता में परिवर्तन; आराधना की रीति में परिवर्तन; एवं धार्मिक उद्देश्यों में परिवर्तन देखने को मिलते हैं।	
②	सामाजिक जीवन	:- यद्यपि वर्णव्यवस्था की नींव ऋग्वेदकाल में पड़ चुकी थी परन्तु यह आधिपत्य उत्तरवैदिक काल में ही दृढ़/कठोरता के रूप में चार वर्ण थे — ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इस दौर में यह वर्ण व्यवस्था कर्म के आधार पर न होकर जन्म आधारित हो गई। अब कोई भी व्यक्ति कितनी भी प्रगति कर ले लेकिन वह जिस वर्ण में जन्म लिया है वह उसी वर्ण का रहेगा। इस वर्णव्यवस्था के सबसे बड़े लाभान्वित	

Scanned with CamScanner

ब्राह्मणों की भी प्रगति हुई पश्चात क्षत्रियों का स्थान था और विद्वान ब्राह्मण एवं क्षत्रिय के पश्चात वैश्य आते थे। इनके निम्न स्थिति शूद्र की थी।

ऐतरेय ब्राह्मण में चारों वर्णों के कर्तव्यों का वर्णन मिलता है। जिसमें ब्राह्मणों को दान लेने वाला (आदायी), सोमपायी, भ्रमणशील एवं कभी-कभी ही वापस न लौटने वाला कहा गया है। जबकि क्षत्रिय का राजा प्रकृति से स्वामी होते थे, वे देश (के) रक्षा के लिए युद्ध करते थे तथा प्रजा से कर लेते थे। वैश्य कर देते थे (अन्यस्य बलिकृत) तथा कृषि, व्यापार और पशुपालन संबंधी कार्य करते थे। शूद्र को तीनों वर्णों का सेवक कहा गया है तथा उन्हें उपनयन संस्कार से वंचित कर दिया गया है। किन्तु उत्तरवैदिक काल में जाति-व्यवस्था स्थापित नहीं हुई थी।

उत्तरवैदिक काल की संयुक्त परिवार व्यवस्था थी और पितृसत्तात्मक परिवार था। परिवार स्तर पर पिता का अधिकार बढ़ गया था वह अपने पुत्र को उत्तराधिकार से वंचित कर सकता था। राजपरिवार में ज्येष्ठाधिकार का प्रचलन होने लगा।

स्त्रियों की दशा में ऋग्वैदिक काल की अपेक्षा गिरावट आयी है। उत्तरवैदिक काल में स्त्रियों का उपनयन संस्कार बंद हो गया, उन्हें सभा और विदथ में भाग लेने से रोक दिया गया, अल्प उम्र में ही इनका विवाह (बालविवाह) होने लगा, उन्हें आर्थिक सम्पत्ति का अधिकार नहीं था। इस काल के ग्रंथ भी स्त्रियों की स्थिति में गिरावट को प्रदर्शित करते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण जहाँ कन्या को चिन्ता का कारण बताया है वहीं अथर्ववेद कन्याओं

सूत्र	विषयबिंदु	कार्य - वर्णनात्मक क्रिया	प्रमाण

के जन्म की कामना करता है। मैत्रायणी संहिता में भी स्त्री को शूद्र और मदिरा की श्रेणी में रखा गया है। इसके बावजूद इस काल अनेक विदुषी स्त्रियों यथा - मैत्रेयी, सुलभा, गार्गी, अपाला, वेदवती, काशकृत्स्नी आदि का उल्लेख मिलता है।

उत्तरवैदिक काल में **गोत्र प्रथा** स्थापित हुई। गोत्र शब्द का मूल अर्थ है - गोष्ठ या वह स्थान जहाँ समस्त कुल का गोधन पाला जाता था। बाद में इसका अर्थ एक ही मूल पुरुष से उत्पन्न लोगों का समुदाय हो गया और फिर गोत्र से बाहर विवाह करने की प्रथा चल पड़ी। यानि एक ही गोत्र या मूल पुरुष वाले लोगों के बीच आपस में विवाह निषिद्ध हो गया।

उत्तरवैदिक काल में **आश्रम-व्यवस्था** स्थापित हुई। इस व्यवस्था के तहत एक व्यक्ति के जीवन को चार भागों में बाँटकर उसे अलग-अलग आश्रम से जोड़ दिया गया। सर्वप्रथम जाबालोपनिषद में चारों आश्रमों का उल्लेख मिलता है। इन चारों आश्रमों में गृहस्थ आश्रम को सर्वोच्च माना जाता है। सहस्रों वर्षों से स्थापित ये चार आश्रम थे:-

1. ब्रह्मचर्य आश्रम (0-25 वर्ष तक) - विद्याध्ययन का काल
2. गृहस्थ आश्रम (25 से 50 वर्ष तक) - तीन ऋणों से मुक्ति, पंच महायज्ञों का निर्वाह
3. वानप्रस्थ आश्रम (50 से 75 वर्ष तक) — सांसारिक जीवन से मुक्ति, पारलौकिक जीवन की तैयारी
4. संन्यास आश्रम (75 से 100 वर्ष तक) — घर का पूर्ण त्याग, मोक्ष प्राप्ति हेतु तपस्या।

उत्तरवैदिककालीन खान-पान, रहन-सहन, मनोरंजन, वस्त्र, आभूषण आदि ऋग्वैदिककालीन के अनुरूप ही रहा।

Scanned with CamScanner

(3) धार्मिक जीवन :-

उत्तर वैदिक कालीन धार्मिक जीवन में मुख्यतः तीन परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं —

ऋग्वैदिक के प्रमुख देवताओं की महत्ता में परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। इस समय ऋग्वैदिक कालीन देवताओं की महत्ता घट गई है और उनके स्थान पर नवीन देवताओं की प्रतिष्ठा हुई है। ऋग्वैदिक कालीन वरुण, इन्द्र आदि का स्थान ऋग्वेद के प्रजापति, विष्णु एवं रुद्र-शिव ने ले लिया। इस काल में सृजन के देवता प्रजापति को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है जबकि पशुओं के देवता रुद्र एवं पालक-रक्षक देव विष्णु का स्थान उसके बाद है। इस काल के अन्य देवता हैं - वरुण और पूषन हैं।

उत्तर वैदिक काल में उपासना की रीति में परिवर्तन देखने को मिलता है। स्तुति पाठ पहले की तरह चलते रहे किन्तु इस काल में यज्ञ अधिक महत्वपूर्ण हो गया। यज्ञ का सार्वजनिक एवं घरेलू दोनों रूप प्रचलित हुए और यज्ञ के बड़े पैमाने पर पशुबलि दी जाने लगी। यज्ञ की दक्षिणा में गायें, दासियाँ, सोना, कपड़ा और घोड़े दिए जाते थे। कहा गया है कि राजसूय यज्ञ करवाने वाले पुरोहित को दक्षिणा में 240000 गायें मिलती थीं। यज्ञ कराने वाला यजमान कहलाता था। यज्ञों का सृजन, अंगीकार और विश्लेषण पुरोहितों ने किया जो ब्राह्मण कहलाते थे।

वैदिक यज्ञ मुख्यतः तीन प्रकार के होते थे—

(क) दैनिक यज्ञ — पंच महायज्ञ, संस्कार यज्ञ आदि

(ख) विशेष अवसरों या त्यौहारों पर किये जाने वाले यज्ञ — दर्श यज्ञ, सौत्रामणि यज्ञ, अग्निहोत्र यज्ञ, पूर्णमास यज्ञ, चातुर्मास्य यज्ञ आदि

(ग) महायज्ञ — अग्निष्टोम यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ, वाजपेय यज्ञ एवं राजसूय यज्ञ आदि

उत्तर वैदिक काल में धार्मिक जीवन के उद्देश्य में गति परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। इस काल में शतपथ ब्राह्मण में पहली बार पुनर्जन्म के सिद्धांत का उल्लेख मिलता है। एवं आर्यों के लौकिक उद्देश्य के साथ पारलौकिक उद्देश्य अधिक महत्वपूर्ण हो गए।

इस दौर के धार्मिक जीवन में प्रकृतिवादी विचार धारा ने लगभग इस काल के अंत में — 600 B.C.) पूर्णता को प्राप्त किया। इस समय उपनिषदों की रचना हुई तथा पुरोहितों के बढ़ते प्रभुत्व, यज्ञीय कर्मकाण्ड तथा अनुष्ठानों के विरुद्ध प्रतिक्रिया आरंभ हुई। उपनिषदों में स्पष्टतः यज्ञों तथा कर्मकाण्डों की निंदा की गई तथा ब्रह्म को एकमात्र सत्ता स्वीकार किया गया जो निर्विकार, अद्वैत एवं निरपेक्ष है, जो जगत से परे भी है और उसमें व्याप्त भी है।

उपनिषदों के अनुसार आत्मसाक्षात्कार ही मोक्ष है जो अज्ञान के नाश से उत्पन्न है।

मुकेश कुमार राम
सहायक प्राध्यापक
इतिहास विभाग
राजनारायण महाविद्यालय पंडौल, मधुबनी